श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

प्रह्लाद स्तुति(भागवत मुखस्थ परीक्षा हेतु)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

सप्तमः स्कन्धः

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः(स्) सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः(स्),
सत्त्वैकतानमतयो वचसां(म्) प्रवाहैः ।
नाराधितुं(म्) पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः(ख्),
किं(न्) तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ 1॥

श्री- प्रह्लादः उवाच– प्रह्लाद महाराज ने प्रार्थना की; ब्रह्म-आदयः- ब्रह्माजी तथा अन्यों ने; सुर-गणाः- उच्च लोक के निवासी; मुनयः- परम साधु व्यक्ति; अथ- भी; सिद्धाः- जिन्होंने सिद्धि या पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है; सत्त्व- आध्यात्मिक स्थिति के लिए; एकतान-गतयः- जिन्होंने बिना विचलन के किसी भी भौतिक कार्यकलाप को ग्रहण कर लिया है; वचसाम्- वृत्तान्तों या वचनों का; प्रवाहैः- धाराओं के द्वारा; न– नहीं; आराधितुम्- प्रसन्न करने के लिए; पुरु- गुणैः- यद्यपि पूर्णतया योग्य; अधुना– अब तक; अपि– भी; पिप्रुः– समर्थ थे; किम्– क्या; तोष्टुम्– प्रसन्न करने के लिए; अर्हति– समर्थ है; सः- वह; मे– मेरा; हरिः- भगवान्; उग्र-जातेः- असुर परिवार में जन्मा ।

मन्ये धनाभिजनरूपतपः(श्)श्रुतौजस्-
तेजः(फ्)प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुं(म्)सो,
भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ 2॥

मन्ये—मैं मानता हूँ; धन— सम्पत्ति; अभिजन– राजसी परिवार; रूप– सुन्दरता; तपः– तपस्या; श्रुत- वेदाध्ययन से प्राप्त ज्ञान; ओजः- इन्द्रिय पराक्रम; तेजः- शारीरिक तेज; प्रभाव- प्रभाव; बल- शारीरिक शक्ति; पौरुष- उद्यम; बुद्धि- बुद्धि; योगाः– योग शक्ति; न– नहीं; आराधनाय– प्रसन्न करने के लिए; हि– निस्सन्देह; भवन्ति— हैं; परस्य– दिव्य का; पुंसः- भगवान्; भक्त्या—केवल भक्ति से; तुतोष- तुष्ट हो गया था; भगवान्– भगवान्; गज-यूथ-पाय- हाथियों के राजा के हेतु ।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं(वँ) वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं(म्) पुनाति स कुलं(न्) न तु भूरिमानः ॥ 3॥

विप्रात्— ब्राह्मण की अपेक्षा; द्वि-षट्-गुण-युतात्- बारह ब्राह्मण गुणों से सम्पन्न; अरविन्द-नाभ- भगवान्, विष्णु, जिनकी नाभि से कमल निकला है; पाद-अरविन्द- चरणकमलों की; विमुखात्- भक्ति से विमुख; श्व-पचम्- निम्नकुल में जन्मे या चाण्डाल को; वरिष्ठम्– अत्यन्त यशस्वी; मन्ये- मानता हूँ; तत्-अर्पित-भगवान् के चरणकमलों में शरणागत; मनः– अपना मन; वचन– शब्द; ईहित— प्रत्येक प्रयास; अर्थ- सम्पत्ति; प्राणम्- तथा जीवन; पुनाति- शुद्ध करता है; सः- वह; कुलम्—अपने परिवार को; न– नहीं; तु— लेकिन; भूरिमानः– जो झूठे ही अपने को प्रतिष्ठित पद पर सोचते हैं।

नैवात्मनः(फ्) प्रभुरयं(न्) निजलाभपूर्णो,
मानं(ञ्) जनादविदुषः(ख्) करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं(न्),
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ 4॥

न—न तो; एव– निश्चय ही; आत्मनः- अपने निजी लाभ के लिए; प्रभुः- स्वामी; अयम्— यह ; निज-लाभ-पूर्णः- जो सदैव अपने में तुष्ट रहता है; मानम्— आदर; जनात्— व्यक्ति से; अविदुषः- जो यह नहीं जानता कि जीवन का लक्ष्य भगवान् को प्रसन्न करना है; करुणः- जो इस मूर्ख अज्ञानी व्यक्ति पर इतना दयालु है; वृणीते- स्वीकार करता है; यत् यत् - जो भी ; जनः– व्यक्ति; भगवते- भगवान् पर; विदधीत—अर्पित करे; मानम्— पूजा; तत्— वह; च– निस्सन्देह; आत्मने- अपने लाभ के लिए; प्रति-मुखस्य- दर्पण में मुख के प्रतिबिम्ब का; यथा- जिस तरह; मुख - श्रीः- मुँह का सौन्दर्य ।

तस्मादहं(वँ) विगतविक्लव ईश्वरस्य,
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः(फ्),
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ 5॥

तस्मात्—अतएव; अहम्— मैं ; विगत-विक्लवः- अयोग्य होने का चिन्तन छोड़कर; ईश्वरस्य- ईश्वर का; सर्व-आत्मना- पूर्ण शरणागत होकर; महि— यश; गृणामि– कीर्तन या वर्णन करूँगा; यथा मनीषम्- अपनी बुद्धि के अनुसार; नीचः- यद्यपि निम्न कुल में उत्पन्न; अजया- अज्ञान के कारण; गुण-विसर्गम्- भौतिक जगत; अनुप्रविष्टः - के भीतर प्रविष्ट; पूयेत- शुद्ध हो; येन– जिससे; हि– निस्सन्देह; पुमान्— मनुष्य; अनुवर्णितेन- कीर्तन किये जाने या पाठ किये जाने पर।

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो,
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य,

विक्रीडितं(म्) भगवतो रुचिरावतारैः ॥ 6॥

सर्वे– सभी; हि–निश्चय; अमी– ये ; विधि-कराः - आदेश पालनकर्ता; तव – तुम्हारे; सत्त्व-धाम्नः- सदैव दिव्य जगत में स्थित रहकर; ब्रह्म-आदयः- ब्रह्मा इत्यादि देवता; वयम्— हम; इव– समान; ईश– हे भगवान्; न– नहीं; च— तथा; उद्विजन्तः— भयभीत; क्षेमाय– रक्षा के लिए; भूतये– वृद्धि के लिए; उत- कहा जाता है; आत्म-सुखाय- ऐसी लीलाओं से निजी तुष्टि के लिए; च- भी; अस्य- इसका; विक्रीडितम्— प्रकट; भगवतः- आपके; रुचिर— अत्यन्त मनोहर; अवतारैः- अवतार से.

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य,
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः(फ्) प्रतियन्ति सर्वे,
रूपं(न्) नृसिं(म्)ह विभयाय जनाः(स्) स्मरन्ति ॥ 7॥

तत्—अतएव; यच्छ— कृपया त्याग दें; मन्युम्— अपना क्रोध; असुरः– मेरा पिता, महा असुर हिरण्यकशिपु; च– भी; हतः- मारा गया; त्वया—आपके द्वारा; अद्य- आज; मोदेत- प्रसन्न होते हैं; साधुःअपि - साधु पुरुष भी; वृश्चिक -सर्प-हत्या - साँप या बिच्छू मार कर; लोकाः- सारे लोक; च- निस्सन्देह; निर्वृतिम्- आनन्द; इताः- प्राप्त किया है; प्रतियन्ति- प्रतीक्षा कर रहे हैं; सर्वे– वे सभी; रूपम्— यह रूप; नृसिंह– हे नृसिंहदेव; विभयाय– उनका भय दूर करने के लिए; जनाः- ब्रह्माण्ड के सारे लोग; स्मरन्ति– स्मरण करेंगे ।

नाहं(म्) बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदं(म्)ष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्-
निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ 8॥

न—नहीं; अहम्—मैं; बिभेमि- भयभीत हूँ; अजित- हे अजेय, परम विजयी पुरुष; ते- तुम्हारा; अति— अत्यन्त; भयानक- भयावना; आस्य–मुख; जिह्वा– जीभ; अर्क-नेत्र- सूर्य की तरह चमकती आँखें; भ्रुकुटी- क्रुद्ध भौहें; रभस- प्रबल; उग्र-दंष्ट्रात्—भयावने दाँत; आन्त्र-स्रजः– आँतों की माला पहने; क्षतज–रक्त से सने; केशर—गर्दन के बाल; शङ्कु-कर्णात्—बर्छे जैसे पैने कान; निर्ह्राद-गर्जना से; भीत – डरा हुआ; दिगिभात्- जिससे बड़े-बड़े हाथी भी; अरि-भित्- शत्रु को फाड़ने वाला; नख-अग्रात्— अपने नाखून के अग्र भाग से ।

त्रस्तोऽस्म्यहं(ङ्) कृपणवत्सल दुः(स्)सहोग्र-
सं(म्)सारचक्रकदनाद् ग्रसतां(म्) प्रणीतः ।
बद्धः(स्) स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),
प्रीतोपवर्गशरणं(म्) ह्वयसे कदा नु ॥ 9॥

त्रस्तः - डरा हुआ; अस्मि– हूँ; अहम्— मैं; कृपण- वत्सल - पतित आत्माओं पर अत्यन्त दयालु मेरे प्रभु, दुःसह- असहनीय; उग्र— भयानक; संसार-चक्र- जन्म मृत्यु का चक्कर; कदनात्— ऐसी बुरी अवस्था से; ग्रसताम्- एक दूसरे को भक्षण करने वाले बद्धजीवों में से; प्रणीतः- फेंका जाकर; बद्धः- बँधा हुआ; स्व-कर्मभिः- अपने कर्मों के द्वारा; उशत्तम- हे दुर्जेय; ते- तुम्हारे; अङ्घ्रि-मूलम् - चरण कमलों के तलवे; प्रीतः- प्रसन्न होकर; अपवर्ग- शरणम्

–जो इस भयावह भौतिक संसार से मुक्ति के लिए शरण हैं; ह्वयसे– आप मुझे बुला लेंगे; कदा– कब; नु– निस्सन्देह ।.

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
दुःखौषधं(न्) तदपि दुःखमतद्धियाहं(म्),
भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ 10॥

यस्मात्— जिसके कारण; प्रिय– अच्छा लगने वाला; अप्रिय—न अच्छा लगने वाला; वियोग— विरह; संयोग- तथा मिलन के कारण; जन्म- जिसका जन्म ; शोक-अग्निना- शोक की अग्नि से; सकल-योनिषु– किसी भी प्रकार के शरीर में; दह्यमानः– जल कर; दुःख- औषधम् — दुखी जीवन के लिए उपचार; तत्—वह; अपि—भी; दुःखम्– कष्ट; अ-तत्-धिया- शरीर को आत्मा मानकर; अहम्— मैं; भूमन्— हे महान; भ्रमामि— घूम रहा हूँ; वद- कृपया उपदेश दें; मे– मुझको; तव- तुम्हारा ; दास्य-योगम्- सेवा कार्य ।

सोऽहं(म्) प्रियस्य सुहृदः(फ्) परदेवताया,
लीलाकथास्तव नृसिं(म्)ह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो,
दुर्गाणि ते पदयुगालयहं(म्)ससङ्गः ॥ 11॥

सः— वह; अहम्— मैं; प्रियस्य- अत्यन्त प्रिय की; सुहृदः- शुभचिन्तक; परदेवतायाः- भगवान् का; लीला-कथाः– लीलाओं की कथाएँ; तव- तुम्हारी; नृसिंह– हे नृसिंहदेव; विरिञ्च- गीताः – शिष्य परम्परा से ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त; अञ्जः– सरलता से; तितर्मि- पार कर लूँगा; अनुगृणन्– निरन्तर वर्णन करते हुए; गुण- प्रकृति के गुणों से; विप्रमुक्तः- विशेषतया अदूषित होने से ; दुर्गाणि– जीवन की समस्त दुखमय परिस्थितियाँ; ते—तुम्हारे; पद-युग-आलय- चरणकमलों में लीन; हंस-सङ्गः–हंसों अर्थात् मुक्तात्माओं की संगति पाकर ।

बालस्य नेह शरणं(म्) पितरौ नृसिं(म्)ह,
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्-
तावद् विभो तनुभृतां(न्) त्वदुपेक्षितानाम् ॥ 12॥

बालस्य- छोटे बच्चों का; न– नहीं; इह– इस संसार में; शरणम्- शरण (रक्षा); पितरौ- पिता तथा माता; नृसिंह- नृसिंहदेव; न– न तो; आर्तस्य- किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति का; च- भी; अगदम्– दवा; उदन्वति - सागर के जल में; मज्जतः– डूबते व्यक्ति की; नौः– नाव; तप्तस्य- भौतिक दुख से पीड़ित व्यक्ति का; तत्-प्रतिविधिः- शमन विधि; यः– जो; इह— इस संसार में; अञ्जसा– अत्यन्त सरलता से; इष्टः– स्वीकृत; तावत्—उसी तरह; विभो– हे स्वामी; तनु-भृताम्— भौतिक शरीर स्वीकार करने वाले जीवों का; त्वत्-उपेक्षितानाम्— आपके द्वारा उपेक्षित तथा अस्वीकृत ।

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्,
यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः(फ्) परो वा ।

भावः(ख्) करोति विकरोति पृथक्स्वभावः(स्),
सञ्चोदितस्तदखिलं(म्) भवतः(स्) स्वरूपम् ॥ 13॥

यस्मिन्— जीवन की किसी भी दशा में; यतः- किसी कारण से; यर्हि- किसी भी समय भूत, वर्तमान या में; येन- किसी से; च—भी; यस्य- किसी के विषय में; यस्मात्- किसी कारण से; यस्मै- किसी के प्रति यथा— जिस तरह; यत्— चाहे जो भी हो; उत— निश्चय ही; यः– जो; तु— लेकिन; अपरः– दूसरा; परः–परम; वा–अथवा; भावः– प्राणी; करोति— करता है; विकरोति— बदलता है; पृथक् भिन्न; स्वभावः– प्रकृति के वशीभूत होकर; सञ्चोदितः -प्रभावित होकर; तत्— वह; अखिलम्– समस्त; भवतः-आपका; स्वरूपम्— आपकी विभिन्न शक्तियों से निस्सृत ।

माया मनः(स्) सृजति कर्ममयं(म्) बलीयः(ख्),
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुं(म्)सः ।
छन्दोमयं(यँ) यदजयार्पितषोडशारं(म्),
सं(म्)सारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः ॥ 14॥

माया—भगवान् की बहिरंगा शक्ति; मनः– मन; सृजति— उत्पन्न करती है; कर्म-मयम्– हजारों इच्छाएँ उत्पन्न करके उसके अनुसार कर्म करती हुई; बलीयः- अत्यन्त शक्तिशाली, दुर्जेय; कालेन- समय द्वारा ; चोदित- गुण- जिनके तीनों गुण विक्षुब्ध होते हैं; अनुमतेन—कृपादृष्टि से अनुमति प्राप्त; पुंसः- भगवान् कृष्ण के अंश विष्णु का; छन्दः-मयम्—वेदों के निर्देशों से प्रभावित; यत्— जो; अजया – अज्ञान अंधकार के कारण; अर्पित– चढ़ाया गया; षोडश– सोलह; अरम्— तीलियाँ ; संसार-चक्रम्— विभिन्न योनियों में बारम्बार जन्म-मृत्यु का चक्र; अज– हे अजन्मा; कः- ऐसा कौन है; अतितरेत्— बाहर निकलने में समर्थ; त्वत्-अन्यः- आपके चरणकमलों की शरण लिए बिना ।

स त्वं(म्) हि नित्यविजितात्मगुणः(स्) स्वधाम्ना,
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे,
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ 15॥

सः—वह; त्वम्—तुम; हि– निस्सन्देह; नित्य- शाश्वत रूप से; विजित-आत्म- जीता गया; गुणः- जिसका बुद्धि गुण; स्व-धाम्ना– अपनी निजी आध्यात्मिक शक्ति से; कालः- काल तत्त्व; वशी-कृत- आपके अधीन; विसृज्य- जिससे सारे प्रभाव; विसर्ग- तथा सारे कारण; शक्तिः– शक्ति; चक्रे— काल चक्र में; विसृष्टम्– फेंका जाकर; अजया- आपकी बहिरंगा शक्ति, तमोगुण से; ईश्वर- हे परम नियन्ता; षोडश-अरे- सोलह तीलियों वाले; निष्पीड्यमानम्— विदलित होकर; उपकर्ष- कृपया मुझे ले लें; विभो- हे महानतम्; प्रपन्नम्– आपकी शरण में आया।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः(श्) श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः(ख्) कुपितहासविजृम्भितभ्रू-

विस्फूर्जितेन लुलिताः(स्) स तु ते निरस्तः ॥ 16॥

दृष्टाः—व्यावहारिक रूप से देखा गया; मया– मेरे द्वारा; दिवि– उच्च लोकों में; विभो– हे प्रभु; अखिल– समस्त; धिष्ण्य-पानाम्— विभिन्न राज्यों या लोकों के प्रधानों की; आयुः– आयु, उम्र; श्रियः- ऐश्वर्य; विभवः– यश, प्रभाव; इच्छति- इच्छा करते हैं; यान्— जो सब; जनः अयम्- ये सारे लोग; ये– जो; अस्मत् पितुः- हमारे पिता हिरण्यकशिपु के; कुपित-हास– क्रुद्ध होने पर अपनी हँसी द्वारा; विजृम्भित– फैली हुई; भ्रू–भौंहों के; विस्फूर्जितेन—केवल स्वरूप से; लुलिताः- नीचे गिराई हुई या समाप्त; सः- वह; तु— लेकिन; ते- तुम्हारे द्वारा ; निरस्तः- पूर्णतया विनष्ट ।

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ,
आयुः(श्) श्रियं(वँ) विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण,
कालात्मनोपनय मां(न्) निजभृत्यपार्श्वम् ॥ 17॥

तस्मात्—अत; अमूः–इन सारे; तनु-भृताम्- देहधारी जीवों के प्रसंग में; अहम्– मैं; आशिषः अज्ञः- ऐसे आशीर्वाद के फल को भलीभाँति जानता हुआ; आयुः– दीर्घ आयु; श्रियम्- भौतिक ऐश्वर्य; विभवम्—प्रभाव तथा यश; ऐन्द्रियम्— इन्द्रियतृप्ति के सारे साधन; आविरिञ्चात्— ब्रह्मा से लेकर; न– नहीं; इच्छामि – चाहता हूँ; ते- तुम्हारे द्वारा; विलुलितान्- समाप्त किये जाने वाले; उरु-विक्रमेण- अत्यन्त शक्तिशाली; काल-आत्मना- काल के स्वामी के रूप में; उपनय- कृपया ले चलें; माम्– मुझको; निज-भृत्य- पार्श्वम्– अपने अत्यन्त आज्ञाकारी भक्त की संगति में ।

कुत्राशिषः(श्) श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः(ख्),
क्वेदं(ङ्) कलेवरमशेषरुजां(वँ) विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्,
कामानलं(म्) मधुलवैः(श्) शमयन्दुरापैः ॥ 18॥

कुत्र—कहाँ; आशिषः– आशीर्वाद, वर; श्रुति-सुखाः- सुनने में मधुर लगने वाले; मृगतृष्णि-रूपाः– मरुस्थल में मृगतृष्णा के समान; क्व—कहाँ; इदम्– यह; कलेवरम्– शरीर; अशेष– असीम; रुजाम्— रोग का; विरोहः– उत्पत्ति स्थान; निर्विद्यते— तुष्ट होता है; न—नहीं; तु— लेकिन; जनः– सामान्य लोग; यत् अपि– यद्यपि; इति– इस प्रकार; विद्वान्—तथाकथित दार्शनिक, विज्ञानी तथा राजनीतिज्ञ; काम-अनलम्— कामेच्छा की प्रज्ज्वलित अग्नि; मधु-लवैः- शहद की बूँदों से; शमयन्— नियंत्रण करते हुए; दुरापैः- हुए; दुरापैः- प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन।

क्वाहं(म्) रजः(फ्)प्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः(स्) सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
नैवं ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः(श्) शिरसि पद्मकरः(फ्) प्रसादः ॥ 19॥

क्व–कहाँ; अहम्—मैं हूँ; रजः - प्रभवः - रजोगुणी शरीर में उत्पन्न होकर; ईश- हे ईश्वर; तमः- तमोगुण; अधिके- बढ़कर; अस्मिन्—इस; जातः- उत्पन्न; सुर- इतर- कुले- नास्तिकों या असुरों के परिवार में; क्व—कहाँ; तव—

तुम्हारी; अनुकम्पा– अहैतुकी कृपा; न– नहीं; ब्रह्मणः– ब्रह्माजी का; न– नहीं; तु— लेकिन; भवस्य– शिवजी का; न- न तो; वै- ही; रमायाः- लक्ष्मी जी का; यत्— जो; मे- मेरा; अर्पितः- चढ़ाया गया; शिरसि - सिर पर; पद्म-करः - कमल जैसा हाथ; प्रसादः-कृपा का प्रतीक ।

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्-
जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
सं(म्)सेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः(स्),
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ 20॥

न–नहीं; एषा– यह; पर - अवर - उच्च या निम्न का; मतिः- ऐसा भेद - भाव; भवतः- आपका; ननु– निस्सन्देह; स्यात्- होवे; जन्तोः– सामान्य जीवों का; यथा- जिस प्रकार; आत्म- सुहृदः- मित्र का; जगतः- समूचे संसारे का; तथापि— फिर भी; संसेवया- भक्त द्वारा की गई सेवा की कोटि के अनुसार; सुरतरोःइव- वैकुण्ठ लोक में कल्पवृक्ष की भाँति; ते– तुम्हारा; प्रसादः– आशीर्वाद या आशीष; सेवा-अनुरूपम्– भगवान् के प्रति की गई सेवा की कोटि के अनुसार; उदयः– अभिव्यक्ति; न– नहीं; पर- अवरत्वम् — छोटे- बड़े का भेदभाव ।

एवं(ञ्) जनं(न्) निपतितं(म्) प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः(फ्) प्रपतन्प्रसङ्गात् ।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः(स्),
सोऽहं(ङ्) कथं(न्) नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ 21॥

एवम्—इस तरह; जनम्- सामान्य व्यक्ति को; निपतितम् — गिरा हुआ; प्रभव- भौतिक जगत के; अहि-कूपे– सर्पों से पूर्ण अंधे कुएँ में; काम-अभिकामम्- इन्द्रियविषयों की कामना; अनु— अनुसरण करते हुए; यः– जो व्यक्ति; प्रपतन्–गिर कर; प्रसङ्गात्- बुरी संगति के कारण या भौतिक इच्छाओं की अधिकाधिक संगति से; कृत्वा आत्मसात्– मुझको वाध्य करके; सुर-ऋषिणा– महान् सन्त पुरुष द्वारा; भगवन्–हे भगवान्; गृहीतः— स्वीकार; सः— वह व्यक्ति; अहम्– मैं ; कथम्– कैसे; नु– निस्सन्देह; विसृजे– त्याग सकता हूँ; तव- तुम्हारी; भृत्य-सेवाम्- शुद्ध भक्त की सेवा।

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च,
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं(वँ) विधातुम् ।
खड्गं(म्) प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्-
त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं(म्) हरामि ॥ 22॥

मत्-प्राण-रक्षणम्— मेरे जीवन की रक्षा करके; अनन्त- हे अनन्त असीम दिव्य गुणों के आगार; पितुः- मेरे पिता का; वधः च - तथा वध; मन्ये – मानता हूँ; स्व-भृत्य - आपके अनन्य दासों का; ऋषि-वाक्यम्- तथा नारद मुनि के शब्दों को; ऋतम्—सत्य; विधातुम्- सिद्ध करने के लिए; खड्गम्– तलवार; प्रगृह्य- हाथ में धारण करके; यत्— चूँकि; अवोचत्— मेरे पिता ने कहा; असत्-विधित्सुः- बड़े ही अपवित्र ढंग से कर्म करने की इच्छा से; त्वाम्— तुमको; ईश्वरः– कोई परम नियामक; मत्-अपरः–मेरी अपेक्षा दूसरा कोई; अवतु- बचा ले; कम्– तुम्हारा सिर; हरामि– अब मैं छिन्न कर दूँगा ।

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः(फ्) पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं(न्) निजमाययेदं(न्),
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ 23॥

एकः– एक; त्वम्– तुम; एव– एकमात्र; जगत्— दृश्य जगत; एतम्– यह; अमुष्य– उस का; यत्—चूँकि; त्वम्- तुम; आदि - प्रारम्भ में; अन्तयोः- अन्त में; पृथक् – अलग से; अवस्यसि- विद्यमान हो; मध्यतः च–बीच में भी; सृष्ट्वा– उत्पन्न करके; गुण-व्यतिकरम्- प्रकृति के तीनों गुणों का रूपान्तर; निज-माययाः– अपनी निजी बहिरंगा शक्ति से; इदम्– यह; नाना इव- अनेक किस्मों की तरह; तैः- उनके द्वारा; अवसितः– अनुभव किया; तत्- वह; अनुप्रविष्टः- प्रवेश करके ।

त्वं(वँ) वा इदं(म्) सदसदीश भवां(म्)स्ततोऽन्यो,
माया यदात्मपरबुद्धिरियं(म्) ह्यपार्था ।
यद् यस्य जन्म निधनं(म्) स्थितिरीक्षणं(ञ्) च,
तद् वै तदेव वसुकालवदृष्टितर्वोः ॥ 24॥

त्वम्—तुम; वा–या तो; इदम्- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; सत्-असत्- कार्य कारण से युक्त; ईश– हे ईश्वर परम नियन्ता; भवान्– आप; ततः- ब्रह्माण्ड से; अन्यः– पृथक् स्थित; माया– शक्ति जो पृथक् सृष्टि प्रतीत होती है; यत्— जिससे; आत्म-पर-बुद्धिः- अपने तथा पराये की धारणा; इयम्—यह; हि– निस्सन्देह; अपार्था- अर्थहीन; यत्—जिस वस्तु से; यस्य– जिसका; जन्म– सृजन; निधनम्— संहार; स्थितिः– पालन; ईक्षणम्– अभिव्यक्ति; च—तथा; तत्—वह; वा – या; एतत्– यह; एव– निश्चय ही; वसुकाल-वत्- पृथ्वी होने के गुण तथा उससे आगे पृथ्वी के सूक्ष्म तत्त्व के समान ; अष्टि-तर्वोः– बीज तथा वृक्ष।

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये,
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्-
तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणां(म्)श्च युङ्क्ते ॥ 25॥

न्यस्य—फेंककर; इदम्– यह; आत्मनि—अपने आप में; जगत् – आपके द्वारा उत्पन्न विराट संसार; विलय-अम्बु-मध्ये-कारणार्णव में, जिसमें प्रत्येक वस्तु सुरक्षित शक्ति के रूप में संरक्षित रहती है; शेषे- सोये हुए के समान कर्म करते हो; आत्मना—अपने से; निज–अपना; सुख-अनुभवः- आध्यात्मिक आनन्द की अवस्था का अनुभव; निरीहः – कुछ भी न करते हुए प्रतीत होना; योगेन- योग शक्ति के द्वारा ; मीलित-दृक्– बन्द आँखें; आत्म- अपने प्राकट्य द्वारा ; निपीत—रोका गया; निद्रः-जिसकी नींद; तुर्ये- दिव्य अवस्था में; स्थितः- अपने को रखते हुए; न– नहीं; तु— लेकिन; तमः– सोने की भौतिक अवस्था; न—न तो; गुणान्— भौतिक गुण; च- तथा; युङ्क्ते– अपने को लगाते हो ।

तस्यैव ते वपुरिदं(न्) निजकालशक्त्या,
सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।

अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधेर्-
नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥ 26॥

तस्य—उस भगवान् का; एव– निश्चय ही; ते- तुम्हारा; वपुः– शरीर; इदम् - यह; निज-काल - शक्त्या- शक्तिशाली काल द्वारा ; सञ्चोदित- क्षुब्ध; प्रकृति-धर्मणः- उनका जिनसे प्रकृति के तीनों गुण; आत्म- गूढम्- आप में निहित; अम्भसि—कारणार्णव के जल में; अनन्त-शयनात्- अनन्त नामक शय्या से; विरमत्-समाधेः- समाधि से जगकर; नाभेः– नाभि से; अभूत्– प्रकट हुआ; स्व-कणिका – बीज से; वट-वत्— महान् वट वृक्ष की तरह; महा-अब्जम् – संसार का महान् कमल ।

तत्सम्भवः(ख्) कविरतोऽन्यदपश्यमानस्-
त्वां(म्) बीजमात्मनि ततं(म्) स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो,
जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम् ॥ 27॥

तत्-सम्भवः-उस कमल से उत्पन्न; कविः- सृष्टि के सूक्ष्म कारण को समझने वाला; अतः– उस से; अन्यत्—अन्य कुछ; अपश्यमानः– देख सकने में अक्षम; त्वाम्- आपको; बीजम्— कमल के कारण को; आत्मनि- अपने में; ततम्— विस्तार कर लिया; सः– उसने; बहिः विचिन्त्य- अपने को बाहरी मानकर; न– नहीं; अविन्दत्-समझा; अब्द-शतम्- देवताओं के अनुसार एक सौ वर्षों तक; अप्सु—जल के भीतर; निमज्जमानः– गोता लगाकर; जाते अङ्कुरे- जब बीज अंकुरित होकर लता रूप में प्रकट होता है; कथम्—कैसे; उह—हे भगवान्; उपलभेत– कोई देख सकता है; बीजम्— पहले से फलित बीज को ।.

सं त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं(ङ्),
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं(म्),
भूतेन्द्रियाशयमये विततं(न्) ददर्श ॥ 28॥

सः—वह; तु—लेकिन; आत्म-योनिः– बिना माता के उत्पन्न; अति-विस्मितः- अत्यधिक चकित; आश्रितः– आसीन; अब्जम्– कमल; कालेन- काल के द्वारा; तीव्र-तपसा-घोर तपस्या द्वारा; परिशुद्ध-भावः- पूर्णतया शुद्ध होकर; त्वाम्—आपको; आत्मनि- अपने शरीर में; ईश- हे ईश्वर; भुवि- पृथ्वी के भीतर; गन्धम्— गन्ध; इव– सदृश; अति- सूक्ष्मम्– अत्यन्त सूक्ष्म; भूत-इन्द्रिय-तत्त्वों तथा इन्द्रियों से बना; आशय-मये—तथा जो इच्छाओं से पूर्ण; विततम्— फैला हुआ; ददर्श– देखा ।

एवं(म्) सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरः(ख्)करोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् |
मायामयं(म्) सदुपलक्षितसं(न्)निवेशं(न्),
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं(वँ) विरिञ्चः ॥ 29॥

एवम् — इस प्रकार; सहस्र– हजार; वदन- मुख; अङ्घ्रि– पाँव; शिरः– सिर; कर– हाथ; उरु— जाँघें; नास-आद्य-नाक इत्यादि.; कर्ण– कान; नयन– आँखें; आभरण- तरह-तरह के गहनों; आयुध- तरह-तरह के हथियारों से; आढ्यम्— लैस ; माया-मयम्– असीम शक्ति द्वारा प्रदर्शित; सत्- उपलक्षित-विभिन्न लक्षणों में प्रकट होकर; सन्निवेशम्– एकसाथ मिलकर; दृष्ट्वा—देख कर; महा–पुरुषम्– भगवान् को; आप— प्राप्त किया; मुदम्– दिव्य आनन्द; विरिञ्चः– ब्रह्मा ने ।

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं(ञ्) च बिभ्रद्,
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणां(म्)स्तु रजस्तमश्च,
सत्त्वं(न्) तव प्रियतमां(न्) तनुमामनन्ति ॥ 30॥

तस्मै—उन ब्रह्मा को; भवान्– आप; हय-शिरः- घोड़े का शिर तथा गर्दन वाले; तनुवम्– अवतार; हि– निस्सन्देह; बिभ्रत्— स्वीकार करते हुए; वेद-द्रुहौ - दो असुर जो वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध थे; अति-बलौ- अत्यन्त बलशाली; मधु-कैटभ-आख्यौ— मधु तथा कैटभ नाम से विख्यात; हत्वा— मारकर; अनयत्— प्रदान किया; श्रुति-गणान्- सारे भिन्न-भिन्न वेद; च- तथा; रजः तमः च- रजो तथा तमो गुणों द्वारा अंकित करके; सत्त्वम्- शुद्ध दिव्य सतोगुण; तव- तुम्हारा; प्रिय- तमाम्— सर्वाधिक प्रिय; तनुम्- रूप का; आमनन्ति- आदर करते हैं।

इत्थं(न्) नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्-
लोकान् विभावयसि हं(म्)सि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं(म्) महापुरुष पासि युगानुवृत्तं(ञ्),
छन्नः(ख्) कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सं त्वम् ॥ 31॥

इत्थम्—इस प्रकार; नृ- यथा मनुष्य; तिर्यक्- पशु की तरह का; ऋषि- महान् ऋषि की तरह; देव- देवता गण; झष– लचर; अवतारैः- ऐसे विभिन्न अवतारों के द्वारा; लोकान्— सारे लोकों को; विभावयसि- रक्षा करते हो; हंसि- मारते हो; जगत् प्रतीपान्- इस संसार में बाधा उत्पन्न करने वालों को; धर्मम्- धार्मिक सिद्धान्तों को; महा-पुरुष– हे महान् पुरुष; पासि- रक्षा करते हो; युग-अनुवृत्तम्— विभिन्न युगों के अनुसार; छन्नः– ढका हुआ; कलौ- कलियुग में; यत्– क्योंकि; अभवः- हुए हैं; त्रि-युगः– त्रियुग नामक; अथ- अतएव; सः- वही पुरुष; त्वम्— तुम ।

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ,
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
कामातुरं(म्) हर्षशोकभयैषणार्तं(न्),
तस्मिन्कथं(न्) तव गतिं(वँ) विमृशामि दीनः ॥ 32॥

न– निश्चय ही नहीं; एतत्– यह; मनः– मन; तव– तुम्हारी; कथासु- दिव्य कथाओं में; विकुण्ठ-नाथ- हे चिन्तारहित वैकुण्ठ के स्वामी; सम्प्रीयते- शान्त हो जाता है या रुचि रखता है; दुरित- पापकर्मों से; दुष्टम्- बेईमान; असाधु – झूठा ; तीव्रम्-वश में करना कठिन; काम-आतुरम्— सदैव विभिन्न इच्छाओं तथा कामेच्छाओं से पूर्ण; हर्ष- शोक -कभी हर्ष द्वारा तो कभी दुख द्वारा; भय– तथा कभी भय द्वारा; एषणा- तथा इच्छा द्वारा; आर्तम्— दुखी;

तस्मिन्— उस मानसिक स्थिति में; कथम्— कैसे;- तव—तुम्हारा; गतिम्– दिव्य कार्यकलाप; विमृशामि- मैं विचार करूँगा और समझने का प्रयास करूँगा; दीनः- अत्यन्त पतित तथा गरीब।

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता,
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं(म्) श्रवणं(ङ्) कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्-
बह्व्यः(स्) सपत्न्य इव गेहपतिं(लँ) लुनन्ति ॥ 33॥

जिह्वा— जीभ; एकतः—- एक ओर; अच्युत- हे अच्युत भगवान्; विकर्षति- आकर्षित करती है; मा– मुझको; अवितृप्ता- सन्तुष्ट न होने से; शिश्नः– जननेन्द्रियाँ; अन्यतः– दूसरी ओर ; त्वक्— चमड़ी; उदरम्- पेट; श्रवणम्- कान; कुतश्चित्– किसी अन्य ओर तक; घ्राणः—नाक; अन्यतः – और भी दूसरी ओर को; चपल-दृक्— चंचल दृष्टि; क्व च– कहीं पर; कर्म-शक्तिः- सक्रिय इन्द्रियाँ; बह्व्यः- अनेक; स- पत्न्यः– सौतें; इव– सदृश; गेह-पतिम्— गृहस्थ को; लुनन्ति- नष्ट कर देती हैं ।

एवं(म्) स्वकर्मपतितं(म्) भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं(म्) स्वपरविग्रहवैरमैत्रं(म्),
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥ 34॥

एवम्— इस तरह; स्व-कर्म-पतितम्- अपने भौतिक कार्यकलापों के फल के कारण पतित हुआ; भव- अज्ञान जगत; वैतरण्याम्— वैतरणी नदी में; अन्यः अन्य—एक के बाद एक; जन्म– जन्म; मरण– मृत्यु; आशन– विभिन्न प्रकार का भोजन; भीत-भीतम्—अत्यधिक भयभीत; पश्यन्— देखते हुए; जनम्- जीव को; स्व- अपना; पर- पराया; विग्रह- शरीर में; वैर- मैत्रम्- मित्रता तथा शत्रुता मानते हुए; हन्त—हाय; इति – इस तरह; पारचर- मृत्यु की नदी के दूसरी ओर स्थित आप; पीपृहि— कृपया हम सबों को बचा लें; मूढम्- आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन हम सभी मूर्ख हैं; अद्य- आज।

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास,
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो,
किं(न्) तेन ते प्रियजनाननुसेवतां(न्) नः ॥ 35॥

कः- कौन सा; नु– निस्सन्देह; अत्र- इस मामले में; ते– आपका; अखिल-गुरो- हे सम्पूर्ण सृष्टि के परम गुरु; भगवन्—हे भगवान्; प्रयासः—प्रयास; उत्तारणे– इन पतित आत्माओं के उद्धार हेतु; अस्य– इसका; भव- सम्भव - सृजन तथा पालन का; लोप—तथा प्रलय का; हेतोः- कारण का; मूढेषु- इस भौतिक जगत में सड़ने वाले मूर्ख व्यक्तियों में; वै– निस्सन्देह; महत्-अनुग्रहः– भगवान् द्वारा दया; आर्त-बन्धो- हे पीड़ित जीवों के मित्र; किम्— क्या कठिनाई है; तेन– उससे; ते—तुम्हारे; प्रिय- जनान्— प्रिय पुरुषों को; अनुसेवताम्- जो सदैव सेवा करने में लगे हैं उनका; नः- हमारी तरह ।

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्-
त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ 36॥

न—नहीं; एव– निश्चय ही; उद्विजे– मैं उद्विग्न अथवा भयभीत हूँ; पर— हे पर; दुरत्यय– पार करना कठिन; वैतरण्याः- वैतरणी नदी को; त्वत्-वीर्य- आपके यश तथा कार्यकलाप का; गायन- कीर्तन करने से या वितरित करने से; महा- अमृत- अमृत के समान आध्यात्मिक आनन्द के महासागर में; मग्न-चित्तः-लीन चित्त वाला; शोचे- मैं केवल पछता रहा हूँ; ततः— उससे; विमुख-चेतसः- वे मूर्ख तथा धूर्त जो कृष्णभावनामृत से विहीन हैं; इन्द्रिय-अर्थ- इन्द्रिय तृप्ति में; माया-सुखाय- क्षणिक मोहमय सुख के लिए; भरम्- मिथ्या भार या उत्तरदायित्व; उद्वहतः — उठाये हुए; विमूढान्– यद्यपि वे मूर्खों तथा धूर्तों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।.

प्रायेण देव मुनयः(स्) स्वविमुक्तिकामा,
मौनं(ञ्) चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको,
नान्यं(न्) त्वदस्य शरणं(म्) भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ 37॥

प्रायेण—प्रायः सभी मामलों में, सामान्यतया; देव– हे ईश्वर; मुनयः– बड़े बड़े सन्त पुरुष; स्व– निजी; विमुक्ति-कामाः- इस भौतिक जगत से मुक्ति के इच्छुक; मौनम्- मूक भाव से; चरन्ति- विचरण करते हैं; विजने - एकान्त स्थान में; न– नहीं; पर-अर्थ-निष्ठाः— कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ पहुँचाने के लिए अन्यों के लिए काम करने में रुचि रखने वाला; न– नहीं; एतान्- इन; विहाय—छोड़कर; कृपणान्— मूर्खों तथा धूर्तों को; विमुमुक्षे- मैं मुक्त होना और भगवद्धाम लौट जाना चाहता हूँ; एकः- अकेला; न – नहीं; अन्यम्— दूसरा; त्वत्- आपके लिए ही; अस्य– इसकी; शरणम्– शरण; भ्रमतः- ब्रह्माण्ड भर में घूमने और भटकने वाले जीव की; अनुपश्ये– मैं देखूँ

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं(म्) हि तुच्छं(ङ्),
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः(ख्),
कण्डूतिवन्मनसिजं(वँ) विषहेत धीरः ॥ 38॥

यत्—जो; मैथुन-आदि- काम चर्चा, काम साहित्य का पठन या विषयी जीवन का भोग; गृहमेधि-सुखम्– परिवार, समाज, मैत्री इत्यादि से अनुरक्त रहने के आधार पर सभी प्रकार का भौतिक सुख.; हि— निस्सन्देह; तुच्छम्— तुच्छ, नगण्य; कण्डूयनेन– खुजलाने से; करयोः- दोनों हाथों के; इव– सदृश; दुःख-दुःखम्- विभिन्न प्रकार के दुख; तृप्यन्ति– तुष्ट हो जाते हैं; न—कभी नहीं; इह– भौतिक इन्द्रिय तृप्ति में; कृपणाः- मूर्ख व्यक्ति; बहु-दुःख-भाजः- विभिन्न प्रकार के दुखों को प्राप्त; कण्डूति-वत्- यदि ऐसी खुजलाहट से सीख ले सके; मनसि-जम्— जो मात्र मानसिक कल्पना है; विषहेत—तथा सहन करता है; धीरः– अत्यन्त पूर्ण तथा गम्भीर व्यक्ति ।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-

व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः(फ्) परं(म्) पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां(वँ),
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥ 39॥

मौन– चुप्पी; व्रत– व्रत; श्रुत— वैदिक ज्ञान; तपः– तपस्या; अध्ययन- शास्त्र का अध्ययन; स्व-धर्म- वर्णाश्रम धर्म का पालन; व्याख्या–शास्त्रों की विवेचना; रहः- एकान्त स्थान में रहना; जप- कीर्तन अथवा मंत्रों का उच्चारण; समाधयः- समाधि में रहना; आपवर्ग्याः- मोक्ष मार्ग में प्रगति करने के लिए किये जाने वाले दस प्रकार के कार्य; प्रायः-सामान्यतया; परम्— एकमात्र साधन; पुरुष- हे प्रभु; ते— वे सब; तु— लेकिन; अजित- इन्द्रियाणाम्— उन व्यक्तियों का जो इन्द्रियों को वश—में नहीं कर सकते; वार्ताः– जीविका; भवन्ति— हैं; उत— इसलिए ऐसा कहा जाता है; न– नहीं; वा– अथवा; अत्र- इस सम्बन्ध में; तु— लेकिन; दाम्भिकानाम्- मिथ्या गर्व करने वाले व्यक्तियों का ।

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे,
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः(स्) समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां(यँ),
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः(स्) स्यात् ॥ 40॥

रूपे– रूपों में; इमे– इन दो; सत्- असती-कार्य तथा कारण; तव- तुम्हारा ; वेद-सृष्टे- वेदों में व्याख्यायित; बीज-अङ्कुरौ– बीज तथा अंकुर; इव– सदृश; न- कभी नहीं; च– भी; अन्यत्— अन्य कोई; अरूपकस्य- बिना आकार वाले आपका; युक्ताः– आपकी भक्ति में लीन; समक्षम्- आँखों के सामने; उभयत्र- दोनों तरह से; विचक्षन्ते— वास्तव में देख सकते हैं; त्वाम् — तुमको; योगेन– केवल भक्ति के द्वारा; वह्निम्—आग; इव–सदृश; दारुषु— काठ में; न– नहीं; अन्यतः– अन्य किसी विधि से; स्यात्— सम्भव है ।.

त्वं(वँ) वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः(फ्),
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं(ञ्) चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं(न्) त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्,
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ 41॥

त्वम् — तुम; वायुः– वायु; अग्निः- अग्नि; अवनिः– पृथ्वी; वियत्– आकाश; अम्बु– जल; मात्राः– इन्द्रियविषय; प्राण—प्राणवायु; इन्द्रियाणि– इन्द्रियाँ; हृदयम्— मन; चित्— चेतना; अनुग्रहः च- तथा मिथ्या अहंकार या देवता; सर्वम्- हर वस्तु; त्वम्—तुम; एव– एकमात्र; स-गुणः- तीन गुणों से युक्त प्रकृति; विगुणः- आध्यात्मिक स्फुलिंग तथा परमात्मा जो भौतिक प्रकृति से परे हैं; च- तथा; भूमन्— हे भगवान्; न – नहीं; अन्यत्— दूसरा ; त्वत्— तुम्हारी अपेक्षा; अस्ति– है; अपि- यद्यपि ; मनः- वचसा- मन तथा वाणी से; निरुक्तम्— प्रत्येक प्रकट वस्तु .

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये,
सर्वे मनः(फ्)प्रभृतयः(स्) सहदेवमर्त्याः ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-
मेवं(वँ) विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥ 42॥

न—न तो; एते– ये सब; गुणाः- प्रकृति के तीन गुण; न– न तो; गुणिनः- तीन गुणों के अधिष्ठाता देव; महत्-आदयः – पाँच तत्त्व, इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राएँ; ये– जो; सर्वे– सभी; मनः- मन; प्रभृतयः– इत्यादि; सह-देव-मर्त्याः - देवताओं तथा मर्त्य मनुष्यों सहित; आदि-अन्त-वन्तः- जिनका आदि तथा अन्त है; उरुगाय- सभी साधु पुरुषों द्वारा महिमा - मण्डित होने वाले हे परमेश्वर; विदन्ति- समझते हैं; हि– निस्सन्देह; त्वाम्— तुमको; एवम्— इस प्रकार; विमृश्य- विचार करके; सुधियः- सारे बुद्धिमान पुरुष; विरमन्ति- रुक जाते हैं; शब्दात्— वेदों का अध्ययन करने या समझने से

तत् तेऽर्हत्तम नमः(स्)स्तुतिकर्मपूजाः(ख्),
कर्म स्मृतिश्चरणयोः(श्) श्रवणं(ङ्) कथायाम् ।
सं(म्)सेवया त्वयि विनेति षडङ्ग्या किं(म्),
भक्तिं(ञ्) जनः(फ्) परमहं(म्)सगतौ लभेत ॥ 43॥

तत्— अतएव; ते— तुम्हारा ; अर्हत्-तम- हे सर्वश्रेष्ठ पूज्य; नमः- नमस्कार; स्तुति-कर्म-पूजाः - प्रार्थना तथा अन्य भक्ति कार्यों से भगवान् की पूजा करना; कर्म- आपको समर्पित कर्म; स्मृतिः- निरन्तर स्मरण; चरणयोः- चरणकमलों का; श्रवणम्- निरन्तर सुनना; कथायाम्- कथाओं का; संसेवया- ऐसी भक्ति; त्वयि- तुम में; विना– रहित; इति– इस प्रकार; षट्-अङ्ग्या—छह अंगों वाला; किम्– कैसे; भक्तिम्– भक्ति को; जनः– व्यक्ति; परमहंस - गतौ– परम हंस द्वारा प्राप्त; लभेत—प्राप्त कर सकता है ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥